

वेदाङ्ग ज्योतिष – एक अध्ययन

प्रो. भारतभूषण मिश्र

कालशास्त्र के अनुरागियों ने ज्योतिष को वेदाङ्गों में परिगणित एक अङ्ग के रूप में स्वीकृत किया है। तथा वेदाङ्गों में भी एक विशेष अङ्ग होने के कारण जहाँ इस शास्त्र की पुष्टि होती है, वहीं आज लोकजीवन में प्रायः व्यक्तियों के द्वारा अपने कार्य के निमित्त ज्योतिष के मुहूर्तादि, शकुनादि माध्यमों से करने की विधा प्रचलित होने के कारण इसकी आधुनिककाल में भी समीचीनता प्रमाणित होती है। वैदिककाल में ज्योतिष का नाम नक्षत्रविद्या था, इस नामकरण की प्रासङ्गिकता शायद यह रही हो कि उस समय नक्षत्रों की गतिविधि का विशेषरूप से अध्ययन किया जाता था। छान्दोग्य-उपनिषद् में यह वर्णन भी मिलता है, कि चन्द्रमा जिस मार्ग से आकाश में भ्रमण करता है, उस पर पडने वाले प्रमुख तारों को ज्योतिष में नक्षत्र कहा गया है। नक्षत्र में अपनी गति का अभाव होता है, कहा भी है “न क्षरति-गच्छति इति नक्षत्रम्”। यहाँ यह भी एक प्रश्न उठता है, कि जब नक्षत्रों में गति नहीं है, तो उनका घट्यादिक मान कहाँ से मिलता है ? यहाँ आचार्यों के अनुसार प्रवहवायु को कारण माना जाता है, जिसके कारण नक्षत्रों का मान ५४ घटी से ६७ घटी तक प्राप्त होता है। नक्षत्रों के सन्दर्भ में यह भी उल्लेख मिलता है कि २९ दिन चन्द्रमा के भ्रमण का निदर्शन २७ नक्षत्रों से होता है, साथ ही वैदिककाल में एक दैवज्ञ का नाम भी नक्षत्रादर्श वर्णित मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि वेदों में ज्योतिष के बीज सन्निहित रहे होंगे।

वैदिककाल में नक्षत्रविद्या का उपयोग कृषिकर्म के साथ-साथ याज्ञिक कर्मकाण्डों में होता था। अहोरात्र, चान्द्रमास और छः ऋतुओं के वर्ष की कल्पना वेदों में वर्णित मिलती है। ऋग्वेद में तो बारह परिधि, एक चक्र एवं तीन नाभियों के अतिरिक्त ३६० शङ्कुओं का वर्णन मिलता है, जो शायद वर्ष का परिमापक प्रतीत होता है। साथ ही साधारण मास के साथ एक उपमास भी होता है, जिसे (मलमास) संवत्सर की पूँछ के रूप में स्वीकार करते हैं। इसका विवरण ऋग्वेद एवं तैत्तिरीयब्राह्मण में समुपलब्ध है। तैत्तिरीयब्राह्मण में यह वर्णन मिलता है, कि ३६० दिनों का एक वर्ष १२ मासों में विभक्त होता है एवं प्रतिमास में ३० दिन पडते हैं।

वेद “विद् ज्ञाने” अर्थ की सार्थकता को सम्पुष्ट करने वाला एक प्रकाशोत्पादक शास्त्र है, जिसे प्रत्यक्षतः जाना जा सकता है, उनके अङ्गों के द्वारा। वेद के मुख्यतः छः अङ्ग माने जाते हैं “(षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च)”; उनमें भी ज्योतिष को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। मुण्डकोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद् आदि ग्रन्थों में ज्योतिष-विद्या का विवरण उपलब्ध होता है, वहीं भास्कराचार्य द्वितीय

जिनका समय १०३६ के लगभग माना जाता है, उनके ग्रन्थ ‘सिद्धान्तशिरोमणि’ में वेदाङ्गों का वर्णन भी उपलब्ध होता है। यथा-

शब्दशास्त्रं मुखं ज्योतिषं चक्षुषी,
श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्पः करौ ।
या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका,
पादपद्मद्वयं छन्द आद्यैर्बुधः ॥^१

इन षडङ्गों में आचार्य ने जो ज्योतिष की चर्चा की है। इससे सिद्ध है, कि वेद ही हम सभी के लिए मार्गप्रदर्शक हैं। समग्र ज्ञान वेद में सन्निहित है। इसे भारतीय विद्वान् ही नहीं अपितु विदेशी विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। वेद हमें यज्ञ की ओर प्रेरित करते हैं, किन्तु सुष्ठुकाल में किये गये यज्ञ ही सफल होते हैं, तथा कुसमय में किये जाने वाले यज्ञ निष्फल होते हैं। इस समय का प्रतिपादन भी ज्योतिषशास्त्र के द्वारा होता है, इसी कारण इसे कालज्ञानशास्त्र भी कहा गया है। यथा-

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः यज्ञाः प्रोक्तास्ते तु कालाश्रयेण ।
शास्त्रादस्मात् कालबोधो यतः स्याद्वेदाङ्गत्वं ज्योतिषस्योक्तमस्मात् ॥^२

वेदाङ्ग-स्वरूप इस ज्योतिषशास्त्र की श्रेष्ठता प्रमाणित करते हुए आचार्य लगधमुनि का श्लोक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। यथा-

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा ।
तद्वेदाङ्गशास्त्राणां ज्योतिषं मूर्ध्नि तिष्ठति ॥^३

वेदाङ्गों का विवरण विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी उपलब्ध होता है, जिससे स्पष्ट है कि वेद का पुराणों से अभिन्न सम्बन्ध होगा। कहा भी है - “इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्”। इसी कारण पुराणों में ज्योतिष विषय की अनेकशः चर्चायें प्राप्त होती हैं। चूँकि ज्योतिष एक प्रकाशोत्पादकशास्त्र है, और जो नक्षत्रों के आधार पर व्याख्यायित होता है। यथा - “ग्रहनक्षत्राण्यधिकृत्य कृतो ग्रन्थः शास्त्रो वा ज्योतिषशब्देनाभिधीयते” इस सन्दर्भ में आचार्य वराहमिहिर की मान्यता है कि-

यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मणः पङ्क्तिम्।

^१ सिद्धान्तशिरोमणि – श्लोक - १०, पृष्ठ ५, अध्याय - १, व्याख्याकार - पं. सत्यदेव शर्मा, सन् - २०११, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

^२ सिद्धान्तशिरोमणि – श्लोक - ०९, पृष्ठ ५, अध्याय - १, व्याख्याकार - पं. सत्यदेव शर्मा, सन् - २०११, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

^३ सिद्धान्तशिरोमणि, पृष्ठ ७, कालमानाध्याय, वेदाङ्गवर्णन से, व्याख्याकार - पं. सत्यदेव शर्मा, सन् - २०११, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

व्यङ्ग्यति शास्त्रमेतत् तमसि द्रव्याणि दीप इव ॥^४

अर्थात् जिस प्रकार अन्धकार में पड़ी वस्तु बिना दीपक के दृष्टिगोचर नहीं होती, उसी प्रकार इस शास्त्र के विषय में जानकारी होने पर ही समाज में पडने वाले ग्रहों के प्रभाव की सूचना हमें प्राप्त होती है, जो वेदाङ्ग होने के कारण वेद की प्रकाशोत्पादकता को सार्थक बनाता है। ज्योतिष एक ऐसा वेद का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है, जिसकी सहायता से हम मनुष्य के जीवन में अथवा प्रकृति में घटने वाली घटनाओं के बारे में पूर्वाभास कर लेने में समर्थ होते हैं, और उससे मुक्ति पाने की दिशा को भी इङ्गित करते हैं। आचार्य कल्याणवर्मा अपने ग्रन्थ 'सारावली' में इस आशय को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं -

विधात्रा लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका।

दैवज्ञस्तां पठेद् व्यक्तं होरा निर्मलचक्षुषा ॥

अर्थार्जने सहायः पुरुषाणामापदार्णवे पोतः।

यात्रासमये मन्त्री जातकमपहाय नास्त्यपरः ॥^५

अर्थात् इस वेदाङ्ग के अध्ययनाध्यापन या महत्त्व को एक विशेष अर्थ में भी देखा जा सकता है। आज जहाँ सरकार भी (अर्थकरी) कामर्शियलशिक्षा देने पर बल दे रही है, जिसमें सूचनादि विषयों (सूचनाप्रौद्योगिकी) के पढ़ने-पढ़ाने की व्यवस्था देखी जा सकती है, जिन पर करोड़ों-करोड़ के खर्च को हम सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु हमारे प्राचीन ज्ञानसागर वेद एवं वेदाङ्गों की अध्ययनाध्यापन के प्रति सरकार की दृष्टि उतनी अनुकूल नहीं प्रतीत होती है, जितनी अपेक्षित है, किन्तु इसमें केवल सरकार को दोष देना ठीक नहीं। बल्कि यहाँ महत्त्वपूर्ण यह है कि हम अपने शास्त्र में वर्णित तथ्यों को सरल एवं सर्वसुलभ बनाकर उसकी उपयोगिता को जनसामान्य तक पहुँचाने का प्रयास करें, जिससे समाज में फैले असन्तोष पर अङ्कुश लगाया जा सके। शास्त्र तो महासमुद्र जैसा होता है, जिसमें गोता लगाना अपनी शक्ति के अनुरूप ही सम्भव हो पाता है। ज्योतिष को सामान्यतः अर्थकरी-विद्या के रूप में माना जाता है, लेकिन इसके और भी पक्षों पर ध्यान देना चाहिए। उदाहरणस्वरूप किसी भी कार्य को करने के लिए राजा (अधिकारी) को अपने मन्त्री (सहयोगी) की सहायता लेनी पड़ती है, उसी प्रकार ज्योतिष भी मनुष्य के लिए सहायक होता है, और शुभाशुभ की विवेचना करता है- जैसे यदि यात्रा करना हो तो प्रायः सभी लोग दिक्शूल का विचार करते हैं, किन्तु कुछ विशेष जिन्हें वेदाङ्ग के विषय का ज्ञान है, वे थोड़ा और आगे बढ़कर चन्द्रबल आदि को भी देखने का उद्यम करते हैं। वैसे चन्द्रमा का

^४ लघुजातकम् - श्लोक - ३, पृष्ठ - २, अध्याय - १, व्याख्याकार - डॉ. कमलाकान्त पाण्डेय, सन् - २००९, प्रकाशक - चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

^५ सारावली, अध्याय - २, श्लोक - १ एवं ५, पृष्ठ - ३-४, सम्पादक - डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, सन् - २०११, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी।

प्रभाव तो हर क्षेत्र में देखा जाता है, किन्तु चन्द्रमा यात्रा के समय दाहिने या सामने हो तो शुभफल देने वाला सुखकर तथा वही चन्द्रमा पीछे या बायें तरफ हो तो अशुभ फल का सूचक माना जाता है, जिसे ऋषिप्रणीत इस श्लोक में देखा जा सकता है; जैसा कि अग्निपुराण एवं मुहूर्तमार्तण्ड में उल्लेख मिलता है-

सम्मुखे त्वर्थलाभः स्यात् दक्षिणे सुखसम्पदः।

पृष्ठतो मरणं चैव वामे चन्द्रे धनक्षयः ॥^६

चूँकि चन्द्रमा का सञ्चरण एक राशि पर सवा दो दिन में होता है, और राशियों का निर्माण नक्षत्रों से होता है। इसलिए चन्द्रमा के वास की दिशा का ज्ञान सभी को सरलता से हो जाए और उनके कार्य में आसानी हो; एतदर्थ ‘होराचक्र’ नामक ग्रन्थ में वर्णन भी मिलता है। यथा-

मेषे च सिंहे धनुपूर्वभागे, वृषे च कन्या मकरे च याम्ये ।

युग्मे तुलायां च घटे प्रतीच्यां, कर्कालिमीने दिशि चोत्तरस्याम् ॥^७

तैत्तिरीयब्राह्मण में ज्योतिष की दृष्टि से कालमान इकाईयों के वर्णन के साथ-साथ संवत्सर, मास, अर्धमास, अहोरात्र और नक्षत्रों के साथ पूर्णिमा, अष्टमी एवम् अमावस्या आदि तिथियों का विशिष्ट वर्णन प्राप्त होता है। साथ ही उक्त स्थलों में नक्षत्रों को चन्द्रमा में, संवत्सर को नक्षत्रों में, ऋतुओं को संवत्सर में और मासों को ऋतुओं में आश्रित बतलाया गया है। वैदिकयुग में यह भी मान्यता थी, कि चन्द्रमा में अपना निजी प्रकाश नहीं होता; इसीको आधार मानकर चन्द्रमा का एक पर्याय “सूर्यरश्मि” भी शायद रखा गया था। जब सूर्य एक ही है, ऐसा ज्ञान वैदिक ऋषियों को था, जिसको आज खगोलविद्, वैज्ञानिक भी मानते हैं। ऋग्वेद के अनुसार “एकः सूर्यो विश्वमनुप्रभूतः”, तो ऐतरेयब्राह्मण में वर्णन मिलता है, कि इस सूर्य का उदय और अस्त नहीं होता। इसी बात की पुष्टि विष्णुपुराण के विवरण से भी होती है, जहाँ वर्णन मिलता है कि समस्त दिशाओं और विदिशाओं में जहाँ के लोग सूर्य को जिस स्थान पर देखते हैं, उनके लिए वहाँ उसका उदय होता है, जहाँ दिन के अन्त में सूर्य का तिरोभाव होता है वहीं उसका अन्त कहा जाता है। सदैव एक रूप रहने वाले सूर्य का वास्तव में न उदय होता है, और न अस्त। सूर्य का दिखाई पडना या न दिखाई पडना ही उसका उदय-अस्त माना जाता है।

नक्षत्रादिकों का वर्णन वेद में तो प्राप्त होता ही है, किन्तु उपनिषदों तथा ब्राह्मणग्रन्थों में भी वर्णित मिलता है, यथा- छान्दोग्योपनिषद् ७-१-८ एवं शतपथब्राह्मण २-१-३-३ में उल्लेख प्राप्त होता है कि उत्तरायण में सूर्य देवों के और दक्षिणायन में पितरों के अधिपति हो जाते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो

^६ होडाचक्रम् - पृष्ठ - १४, सम्मुखचन्द्रफल, सम्पादक - डॉ. हरिप्रसाद द्विवेदी, सन् - १९९९, प्रकाशक - शिव संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

^७ होडाचक्रम् - पृष्ठ - १३, सम्मुखचन्द्रफल, सम्पादक - डॉ. हरिप्रसाद द्विवेदी, सन् - १९९९, प्रकाशक - शिव संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

जाता है कि हमारे ऋषियों (आर्यों) के पास सूर्य की गति के विषय में पूर्ण ज्ञान था। ऋग्वेद १-२४-१० में सप्तर्षियों की गति का उल्लेख प्राप्त होता है। इस मन्त्र में ऋक्षा शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ सायण के अनुसार सप्तनक्षत्र किया गया है। ऋच् का अर्थ उज्वलता से है, और इसीसे ऋक्ष शब्द का निर्माण हुआ है। इसलिए नक्षत्रों और सप्तर्षियों को कुछ आचार्य उज्वल शब्द से अभिहित करते हैं, जिसे यूरोपीय लोगों के साथ-साथ मैक्समूलर भी भारतीय पक्ष का समर्थन करते हुए दिखते हैं। फलतः यह कहा जा सकता है, कि आर्यों के पास नक्षत्रों आदि का पूर्ण ज्ञान था, यथा- शुक्लयजुर्वेद के-

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।

हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥^८

इस मन्त्र में वर्णन मिलता है कि सूर्यदेव अपने आकर्षण गुण के कारण भौमादि लोकों और पृथ्वी को अपनी-अपनी कक्षा में रखे हुए है, जो सूर्य के चारों ओर घूमते रहते हैं। सूर्य को भी स्वर्णाभायुक्त शरीर से लोक-लोकान्तरों को प्रकाशित करते हुए चलायमान देखा जा सकता है। इससे यह भी ज्ञात होता है, कि सूर्य अपने ग्रहों और उपग्रहों को साथ लिए भ्रमण करते हैं। ऋग्वेद के अन्य मन्त्र भी इसकी पुष्टि करते हैं :-

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे।

सविता युन्नैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता चामदंहत् ॥^९

अर्थात् अपने आकर्षण से सूर्य ने पृथ्वी को आबद्ध किया हुआ है, तथा ग्रह भी निबद्ध हैं। सूर्य के उदयादि को ऋग्वेद के निम्न मन्त्र से स्पष्ट किया गया है :-

“आयं गौः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता चामदंहत्”^{१०}

इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो रहा है, कि गतिपरायण और तेजस्वी सूर्य उदित होकर अपनी माता पूर्वदिशा का आलिङ्गन करते हुए अपने पिता आकाश की परिक्रमा करते हैं। सूर्य के उदय और अस्त के बीच ही समाज में सारी प्रक्रियाओं का सञ्चरण भी होता है, जैसा कि 'सारावली' के विवरण से स्पष्ट है:-

यस्योदये जगदिदं प्रतिबोधयेति, मध्यस्थिते प्रसरति प्रकृतिक्रियासु ।

अस्तंगते स्वपितिच्चोच्छ्वसितैकमात्रं भावत्रये स जयति प्रकटप्रभावः ॥^{११}

^८ रुद्राष्टाध्यायी - मन्त्र १७, अध्याय - ४, पृष्ठ - १०२, ग्रन्थसङ्घा - १६२७, संवत् - २०६२, प्रकाशक - गीताप्रेस गोरखपुर, उ.प्र.।

^९ ऋग्वेद. ८.१२.३०; १०.१४९.१

^{१०} ऋग्वेद. १०-१८९-१।

^{११} सारावली, अध्याय - १, श्लोक - १, पृष्ठ - १, सम्पादक - डॉ. सत्येन्द्र मिश्र, सन् - २०११, प्रकाशक - चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी।

अर्थात् सूर्योदयानन्तर सारा जगत् जाग्रदवस्था को प्राप्त कर नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं (पूजन-अर्चन) के सम्पादन में संलग्न होता है, तथा जब सूर्य क्रमशः ऊपर की ओर बढ़ते हैं तो सभी अपने-अपने जो उनके स्वाभाविक क्षेत्र हैं, उसके अनुरूप स्वकार्य करने में सन्नद्ध हो जाते हैं, एवं सूर्यास्तासन्न स्थिति में विश्रामोन्मुख देखे जा सकते हैं। इन उद्धरणों से यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि वैदिकऋषियों को पृथ्वी आदि ग्रहों का सूर्य की परिक्रमा करना पूर्णरूपेण विदित था, तथा उन्हें यह भी ज्ञात था कि स्वयं सूर्य भी स्थिर न रहकर अपनी कक्षा में भ्रमण करते हुए ग्रह-परिवार के साथ आकाश में किसी निर्दिष्ट स्थान की ओर चले जा रहे हैं। इन प्रमाणों के रहते हुए भी कुछ आचार्यों ने पृथ्वी को स्थिर माना है, इसमें यवन-प्रभाव या वेद के समुचित प्रचारक का अभाव माना जा सकता है, जो भास्कर, लल्ल, श्रीपति और ब्रह्मगुप्तादि के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। गोल के विवरण से प्राप्त होता है कि-

स्वशक्त्या भूमिगोलोऽयं निराधारोऽस्ति खे स्थितः।

पृथुत्वाद् समवद् भाति चलोऽप्यचलवत् यथा ॥^{१२}

इससे यह प्रतीत हो रहा है कि पृथ्वी चल है, किन्तु वह अपने अक्ष पर इस प्रकार घूमती है कि हम भूपृष्ठवासी लोगों के लिए स्थिर की भाँति अनुभवगम्य है। इसे मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्भकार के चाक से स्पष्ट किया जा सकता है, कि जब निर्माण के निमित्त चाक का सञ्चरण दक्षिणावर्त होता है और उस पर यदि वामावर्त किसी पिपीलिका को स्थापित कर दिया जाय, तो गतिमान पिपीलिका दक्षिणावर्त गति में ही दिखाई पड़ती है, क्योंकि उसकी गति से चाक की गति तीव्र है किन्तु यथार्थ में पिपीलिका वाएँ की गति से चल रही है। इसे स्पष्टतः आर्यभट्ट के ‘भाभ्रमरेखानिरूपणम्’ नामक ग्रन्थ की सहायता से जाना जा सकता है :-

अनुलोमगतिर्नैस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।

अचलानि भानि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ॥^{१३}

इतना ही नहीं आर्यों को चान्द्रमास, मलमास आदि का भी पूर्ण ज्ञान था। वे चान्द्रनक्षत्रों से भी परिचित थे। यथा पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है।^{१४} कृष्णयजुर्वेद, अथर्ववेद, तैत्तिरीयब्राह्मण आदि में चान्द्रनक्षत्रों का उल्लेख मिलता है। ज्योतिषविद्या के अन्तर्गत

^{१२} गोलपरिभाषा - ज्याक्षेत्रविचार - पृष्ठ - २, श्लोक - १०, लेखक - पं. श्री सीताराम झा, सन् - १९४८, प्रकाशक - मास्टर खेलाडीलाल एण्ड सन्स, काशी संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी।

^{१३} सिद्धान्तशिरोमणि - ग्रहगणित, मध्यमाधिकार के भगणाध्याय की टीका में तथा च वृद्ध आर्यः, पृष्ठ - ४२, आर्यभट्ट, सम्पादक - डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, सन् - १९८१, प्रकाशक - सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी - २

^{१४} ऋग्वेद - १०-८५-१३

अङ्कगणित, बीजगणित, रेखागणित आदि को आर्यों ने माना है, और इस विद्या में ईसा से बहुत पहले आर्यों ने दक्षता प्राप्त की थी, इसका समर्थन अन्य भी बेली, लाप्लास, प्लेफेयर आदि यूरोपीय विद्वानों ने किया है। हरमनहेकल जो विदेशी विद्वान हैं, उन्होंने लिखा है कि ब्राह्मणग्रन्थ ही बीजगणित के आदि-कारण हैं। वस्तुतः शतोत्तर-गणना और शून्य को सारा संसार आर्यों की देन स्वीकार करता है। फिनीशियन-रीति में ९ सङ्ख्या लिखने के लिए नौ लकीरें खींची जाती थीं, और ९० लिखने के लिए अँग्रेजी के चार “एच” (H) अक्षर लिखे जाते थे। यूनानी लोगों की सबसे बड़ी सङ्ख्या का नाम मरियड था, तथा रोम वालों की सबसे बड़ी सङ्ख्या मिल्ली थी। मरियड दस हजार का और मिल्ली एक हजार का बोध कराने वाली सङ्ख्या थी। इसी कारण इस विद्या में ग्रीक और रोमन, आर्यों के शिष्य जैसे माने जा सकते हैं।

तैत्तिरीयसंहिता, मैत्रायणीसंहिता, काठकसंहिता आदि में शतोत्तर-गणना का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में साठ हजार और अयुत अश्वों को प्राप्त करने का निर्देश मिलता है।^{१५} यजुर्वेद में एक पर बारह शून्य स्थापित कर दस खरब तक की सङ्ख्या का उल्लेख प्राप्त होता है। अनुयोगद्वारसूत्र में तो असङ्ख्य तक की गणना की गयी है। यहाँ दस पर एक सौ चालीस बिन्दुओं को रखकर सङ्ख्या का निर्धारण किया गया है। पिङ्गलछन्दःसूत्र में भी शून्य का उपयोग प्राप्त होता है। जिनभद्र के अनुसार वृद्धिक्रम में सङ्ख्याओं को लिखने के लिए शून्य का प्रयोग किया गया था। आचार्य सिद्धसेन ने अपने ग्रन्थ “तत्त्वार्थाधिगमसूत्र” की टीका में बड़ी सङ्ख्याओं को लिखने के लिए शून्य का उपयोग दर्शाया है।

यजुर्वेद में शत, सहस्र, अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्बुद, न्यर्बुद, अन्त, परार्द्ध तक की सङ्ख्याओं का उल्लेख मिलता है। इन सबमें शून्य का प्रयोग देखा जा सकता है। संस्कृतवाङ्मय में तो शून्य के सम्बन्ध में अध्याय और परिच्छेद तक का विवरण उपलब्ध होता है। यूरोप में छठीं शताब्दी से ही आर्य- अङ्कों की चर्चा चल पड़ी थी। आठवीं शती में अरब के देशों ने इसे अपनाया। लियोनार्डो ने तेरहवीं शती में मिस्र, सीरिया, यूनान, इटली आदि देशों की अङ्कविद्या का अध्ययन कर निश्चय किया कि हिन्दुओं की अङ्कविद्या-प्रणाली सर्वोत्तम है, उन्होंने इस विद्या का यूरोपीय देशों में प्रचार करने का बहुत ही प्रयत्न किया है। १५ वीं शती से १७ वीं शती तक यूरोपीय विद्वानों ने इसी आर्यप्रणाली का ग्रहण किया है। अतएव कहा जा सकता है, कि इन्हीं वैदिक अङ्कों को अन्तर्राष्ट्रियरूप में माना गया है। गणित के वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल आदि के आविष्कारक भारतीय मनीषी ही हैं। अरबदेशीय विद्वान् इब्नबहशीजहीज एवम् अबल-अलमसूदी आदि ने भी इसे स्वीकार किया है, और वर्ग-समीकरण-उच्च घातादि के जन्मदाता आर्यों को ही मानते हैं।

^{१५} ऋग्वेद - ८-५६-२२

ज्यामिति का आदिजनक वैदिकसाहित्य को ही माना गया है, या यों कहें कि ज्यामितिसिद्धान्त वैदिकसाहित्य में प्राप्त होता है। कल्पसूत्रों के अन्तर्गत शुल्बसूत्रों में यज्ञवेदियों के निर्माण की व्यवस्था प्राप्त होती है। इन वेदियों के अनेक प्रकार हैं, जिनके निर्माण में ज्यामिति की आवश्यकता होती है। इस तरह शुल्बसूत्रों में भुजा से कर्ण का सम्बन्ध, वर्ग के समान आयत, वर्गानुरूप वृत्त आदि का पूरा-पूरा विश्लेषण किया गया है। आधुनिकविद्वान् बैलीसाहब के अनुसार ईसा के हजारों वर्ष पूर्व आर्य-हिन्दूवैज्ञानिक ग्रह-गणना करते थे। फ्रेञ्चविद्वान् लाप्लास का मत है, कि ईसा के लगभग तीन सौ वर्ष पहले हिन्दू-आचार्य ग्रहों का स्थान एवम् उनके आनयन की विधि को भलीभाँति जानते थे, और एक विकला तक के सूक्ष्ममान का आनयन कर लेते थे। प्लेफेयर भी इसी मत का सम्मान करते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् कोलब्रूक ने लिखा है, कि क्रान्तिमण्डल और अयनांश गति आदि के जनक आर्य हैं। पुराणों में भी अनेकों उल्लेख ज्योतिष-विषयक प्राप्त होते हैं। पुराण, जिसे वेद की व्याख्या के रूप में जाना जाता है। सारांशतः हम स्पष्ट-रूप से कह सकते हैं, कि आज भारतीय जन-जीवन के लिए वेद एवं वेदाङ्ग का अप्रतिम महत्त्व है। क्योंकि यह शास्त्र जहाँ यज्ञों का कालविधान बताता है, वहीं मानव को सही रास्ते पर चलने की दिशा एवं स्पष्ट उद्देश्य को भी सङ्केतित करा देता है, जिससे जहाँ मानव का श्रम व्यर्थ नहीं जाता, एवं वह शीघ्रातिशीघ्र अपने उद्देश्य-प्राप्ति में सफल भी होता है।

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालानुपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।
तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्॥^{१९}

प्रो. भारतभूषण मिश्र

ज्योतिषविभागाध्यक्ष

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर

भोपाल (म.प्र.)

^{१९} सिद्धान्तशिरोमणि - ग्रहगणिते, कालमानाध्यायः, पृष्ठ - ११, वासनावार्तिकसूत्रकृत, सम्पादक - डॉ. मुरलीधर चतुर्वेदी, सन् - १९८१, प्रकाशक - सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी - २